भ्रष्टाचार, कालाधन और नोटबन्दी

उत्तर-सत्य युग में

अवसरवादी राजनीति का बढ़ता खतरा

प्रोफेसर डी. नरसिम्हा रेड्डी

अर्थशास्त्र के रिटायर्ड प्रोफेसर

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

देश-विदेश

पुस्तिका 11

प्रथम हिन्दी संस्करण : मार्च, 2018

लेखकः प्रोफेसर डी. नरसिम्हा रेड्डी

(फ्रंटलाइन, खण्ड 34, अंक 23, 24-11-17 से साभार)

गार्गी प्रकाशन
1/4649/45बी, गली न0 -4,
न्यू मॉडर्न शाहदरा, दिल्ली-110032
e-mail: gargiprakashan15@gmail.com
Website: gargibooks.com

मुद्रकः
प्रोग्रेसिव प्रिन्टर्स,
ए-21 झिलमिल इण्ड्स्ट्रियल एरिया,
शाहदरा, दिल्ली-110095

ISBN :

मूल्यः 10 रुपये

08 नवम्बर 2016 की शाम प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी सभी मीडिया चैनलों पर यह घोषणा करने के लिए प्रकट हुए कि उनकी सरकार ने यह निर्णय लिया है कि 500 और 1000 के पुराने नोट प्रचलन से बाहर कर दिये जायें ताकि 'भ्रष्टाचार और कालेधन की जकड़बन्दी को तोड़ा जा सके'। उन्होंने उद्घोष किया कि 'राष्ट्रविरोधी और असामाजिक तत्वों द्वारा जमाखोरी करके रखे गये 500 और 1000 के पुराने नोट अब कागज के टुकड़े मात्र रह जायेंगे'। नोटबन्दी एक वित्तीय या मौद्रिक कदम है और आमतौर पर ऐसे कदम केन्द्रीय बैंक या वित्त मंत्रालय द्वारा उठाये जाते हैं, लेकिन नोटबन्दी की यह घोषणा न तो रिजर्व बैंक के गवर्नर ने की और न ही वित्त मंत्री ने। जिससे इस बारे में गम्भीर संदेह पैदा होता है कि इस निर्णय में वे शामिल भी थे। प्रधानमंत्री ने नोटबन्दी के बारे में घोषणा की जिम्मेदारी खुद ही उठायी और लगभग 40 मिनट हिन्दी और 40 मिनट अंग्रेजी में इस निर्णय की घोषणा करते रहे। उनका भाषण नीतिगत निर्णय और उसके लिए लोगों का समर्थन माँगने तक सीमित नहीं रहा बल्कि उन्होंने प्रक्रिया सम्बन्धी 20 से ज्यादा ब्यौरे भी गिनवाये जो आमतौर पर सरकार द्वारा जारी की जाने वाली अधिसूचना का हिस्सा होते हैं। इस सुविचारित रणनीति के पीछे मकसद लोगों में यह भरोसा पैदा करने का मंसूबा था कि प्रधानमंत्री अतीत की बुराईयों को मिटा देने के लिए कृत संकल्प हैं। मानव व्यवहार का अध्ययन करने वाले बहुत से मनोवैज्ञानिक और अर्थशास्त्री अच्छी तरह इस बात को समझते हैं कि लोग किसी आंकड़े या प्रक्रिया के पीछे की असलियत से जितने अनजान होते हैं, उन्हें इस्तेमाल करने वालों के प्रति उनमें उतना ही ज्यादा आदर और सम्मान का भाव होता है। इस तरह की राजनीतिक रणनीतियों को अपनाये जाने के साक्ष्य पूरी दुनिया के पैमाने पर बढ़ते जा रहे हैं।

देश में किसी वित्तीय या आर्थिक संकट का कहीं कोई संकेत नहीं था। इसके विपरीत, प्रधानमंत्री ने अपने भाषण की शुरुआत यह बताते हुए की कि जब उन्होंने शासन की बागडोर सम्भाली तो यह भावना मौजूद थी कि BRICS के 'I' अर्थात् इंडिया की स्थिति डंवाडोल है कि नई सरकार के शासन में किस तरह से भारत मजबूत हुआ और एक ऐसी अर्थव्यवस्था बना जिसका सकल घरेलू उत्पाद सबसे ज्यादा है। यह सच है कि प्रचलित नोटों के लगभग 86 प्रतिशत को बन्द करने का कदम एक असाधारण रूप से बड़ा कदम था और इसे लागू करने के लिए लोगों को

कायल बनाने की जरूरत थी। लेकिन इससे भी कहीं ज्यादा भाषण का अधिकांश हिस्सा भ्रष्टाचार और कालेधन के खिलाफ लोगों के गुस्से को उभारने और लोगों के दिमाग में यह बात बैठाने के प्रति समर्पित था कि कालेधन का बड़ा हिस्सा नकदी या कैश के रूप में मौजूद है और नोटबन्दी उसका खात्मा कर देगी। इस बात पर काफी जोर दिया गया था कि लोगों को कुछ कष्ट जरूर होगा पर यह थोड़े दिन का ही होगा और कालेधन का पर्दाफाश करने और भ्रष्टाचार के खात्मे जैसे बड़े-बड़े फायदों के सामने यह कुछ भी नहीं है।

बहुत सारे सवाल

नोटबन्दी ने अर्थव्यवस्था को बहुत ज्यादा नुकसान पहुँचाया है, लेकिन इस नोटबन्दी से भ्रष्टाचार और कालेधन को निश्चित तौर पर कोई बड़ी खरोंच नहीं आयी। इससे हमारे सामने कई सवाल खड़े होते हैं-- प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कालेधन को बाहर लाने और भ्रष्टाचार को काबू में करने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को दर्शाने के लिए नोटबन्दी को एक साधन के रूप में क्यों चुना? वह क्या बात थी जिसके चलते उन्होंने एक ऐसे नेता के रूप में अपनी छवि उभारने की कोशिश की, जो अपने वायदे निभाना जानता है, नोटबन्दी को एक साधन के रूप में अपनाया? अथवा, क्या वह एक साधन के रूप में नोटबन्दी की विफलता और उसके दुष्परिणामों के बारे में बिल्कुल अनभिज्ञ थे?

यह विश्वास करना कठिन है कि प्रधानमंत्री को भ्रष्टाचार और कालेधन पर काबू पाने की नोटबन्दी की सीमाओं और अर्थव्यवस्था तथा आम जनता पर इसके बुरे प्रभावों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। इसके सबूत हैं कि उन्हें इन दुष्परिणामों की जानकारी थी। उदाहरण के लिए, रिजर्व बैंक के भूतपूर्व गवर्नर ने अपनी चुप्पी तोड़ी है। उन्होंने अपनी ताजा पुस्तक 'आई डू व्हाट आई डू' में हमें बताया है कि फरवरी 2016 में कालेधन पर लगाम लगाने के उपाय के तौर पर नोटबन्दी को अपनाने के बारे में उनसे मौखिक सलाह मशविरा किया गया था। उन्होंने सलाह दी थी कि नोटबन्दी एक उचित कदम नहीं होगा और उसके जो भी दूरगामी फायदे हों, वे तात्कालिक नुकसानों की भरपाई के लिए नाकाफी होंगे और यथेष्ट लक्ष्यों को पाने के लिए इससे कहीं बेहतर विकल्प मौजूद हैं। सरकार ने इस पर एक लिखित नोट की माँग की। रिजर्व बैंक ने इन सभी विचारों को पेश करने के साथ-साथ नोटबन्दी का कदम उठाने से पहले की तैयारियों और उसमें लगने वाले समय का एक खाका भी पेश किया। इसके अलावा रिजर्व बैंक ने यह भी रेखांकित किया कि बिना तैयारी के

नोटबन्दी लागू करने पर क्या होगा? वे आगे लिखते हैं कि सरकार (सम्भवत: प्रधानमंत्री कार्यालय) ने बाद में इस मुद्दे पर विचार के लिए एक कमेटी का गठन किया जिसकी बैठकों में रिजर्व बैंक की ओर से एक डिप्टी गवर्नर भी हिस्सा लेते थे। अत: इससे स्पष्ट है कि नोटबन्दी का निर्णय करते समय प्रधानमंत्री को उसके कालेधन और भ्रष्टाचार पर पड़ने वाले सीमित प्रभावों और अर्थव्यवस्था और आमजनता को होने वाले संभावित नुकसान की पूरी जानकारी थी। इसके अलावा मीडिया में इस बात की जोरों से अटकलें चल रही थीं कि प्रधानमंत्री ने अपना काफी वक्त पूना के चार्टर्ड एकाउण्टेन्टों के एक आर्थिक सलाहकार समूह के साथ गुजारा था जो 'विदेशी' ज्ञान के बरक्श भारतीय अर्थव्यवस्था की खास समझ रखते थे।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण सवाल खड़ा होता है-- इतनी सब जानकारी के बावजूद, प्रधानमंत्री ने कालेधन व भ्रष्टाचार पर लगाम कसने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दर्शाने के लिए नोटबन्दी को ही क्यों चुना? इस सवाल का जवाब देने के लिए हमें कालेधन और भ्रष्टाचार की जनता में मौजूद समझ में आये बदलावों की प्रकृति पर ध्यान देना होगा। नोटबन्दी पर चली आलोचनात्मक बहसों में हालाँकि बहुत सारी बौद्धिक ऊर्जा खर्च की गयी परन्तु इन बहसों में भ्रष्टाचार और कालेधन की गढ़ी हुई छवियों और प्रधानमंत्री मोदी द्वारा उनके राजनीतिक इस्तेमाल के संदर्भ पर उचित ध्यान नहीं दिया गया। इसकी एक व्याख्या यह है कि आलोचक नोटबन्दी के वित्तीय और आर्थिक दुष्परिणामों को लेकर इतने ज्यादा पूर्वाग्रहग्रस्त थे कि उन्होंने इस कदम के पीछे की राजनीति की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया। दूसरी व्याख्या है कि जिस तरह आम जनता को यह भरोसा दिला दिया गया था कि प्रधानमंत्री नोटबन्दी के जरिये भ्रष्टाचार और कालेधन पर शिकंजा कसने जा रहे हैं, आलोचक भी कहीं न कहीं इस भरोसे के जाल में फंस गये थे।

आने वाले अध्यायों में हम कालेधन और भ्रष्टाचार को राजनीतिक संदर्भ में रखकर यह समझने की कोशिश करेंगे कि इन मुद्दों की बदलती छवियों को प्रधानमंत्री की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए कैसे जानबूझकर इस्तेमाल किया गया।

नवउदारवादी व्यवस्था और भ्रष्टाचार

अब हमारे सामने यह प्रस्थापना आती है कि दुनियाभर में नवउदारवादी अर्थव्यवस्थाओं का उभार ही वह परिघटना है जो न सिर्फ व्यापक स्तर पर सामने आये भ्रष्टाचार और कालेधन की जड़ में है बल्कि उन्हें नयी परिघटनात्मक ऊँचाईयों

पर पहुँचाने के लिए भी जिम्मेदार है। इसने लेन-देन के इस विराट 'घोटाला' स्वरूप की ओर लोगों के ध्यान और उनकी कल्पनाशीलता को खींचा है, जो विदेशों में जमा नकद रकम के भण्डारों से ताल्लुक रखते हैं। आम लोगों की नजर में इस रकम को बाहर निकालने के लिए इस बुराई को चिरस्थायी बनाने वाली ताकतों के विरूद्ध एक सशक्त और दृढ़संकल्प सद्गुणी नेतृत्व की दरकार होगी। लोगों में मौजूद इस छवि को भुनाने के लिए एक ऐसी रणनीति की जरूरत थी जो उनकी खयाली छवि को अपील करें, उनकी भावनाओं को भड़काए और साथ ही समाज को तमाम बुराईयों से मुक्त करने वाले सद्गुणी और अटल नेतृत्व के रूप में खुद की एक छवि गढ़ सके।

आइये, पहले हम भ्रष्टाचार की अवधारणा में आये रूपान्तरण तथा उसके रूप और आम लोगों व उनकी समझ में आये बदलावों का एक सरसरी जायजा लेते हैं। भ्रष्टाचार की एक प्राचीनता है-- दरअसल, वह प्राचीन काल से ही मौजूद रहा है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में एक सामाजिक बुद्धिभ्रंश के तौर पर इसकी व्यापक मौजूदगी की चर्चा की गयी है जिसका उस समय भी एक लम्बा इतिहास था। इस ऐतिहासिकता के बावजूद, दूसरे विश्वयुद्ध के भी काफी समय बाद तक समाज विज्ञान के शोधों में भ्रष्टाचार पर काम करना राजनीतिक रूप से सही या फैशनेबल नहीं समझा जाता था, लेकिन यह सब अब बदल चुका है।

1980 के दशक के मध्य तक समाज विज्ञान में 'भ्रष्टाचार सम्बन्धित अध्ययनों' की बाढ़ आ गयी। यह बाढ़ कोई आकस्मिक परिघटना नहीं थी बल्कि इसकी जड़ें 'वाशिंगटन आम सहमति' के दुष्प्रभावों से जुड़ी घटनाओं में स्थित थीं।

यह महज कोई संयोग नहीं था कि 'उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण' के साथ-साथ 1980 के दशक के मध्य से ही दुनिया की रूचि भ्रष्टाचार पर शोध में भी जगी। 1986 में 'भ्रष्टाचार और ढाँचागत सुधार' नाम का एक अलग अन्तर्राष्ट्रीय शोध जर्नल शुरू हुआ। 1990 के दशक तक तीन प्रतिष्ठित समाज विज्ञान के जर्नलों-- अन्तर्राष्ट्रीय समाज विज्ञान जर्नल (14 सितम्बर 1996), द आई डी एस बुलेटिन (वाल्यूम 27, नं0-2, 1996) और थर्ड वर्ल्ड क्वार्टरली (वाल्यूम 20, नं0-3) के भ्रष्टाचार पर विशेष अंक प्रकाशित हुए।

पड़ोसी 'एशिया पैसीफिक देशों में 1990 के दशक से भ्रष्टाचार पर शोध तेजी से बढ़कर उद्योग का रूप ले रही है। दरअसल, भ्रष्टाचार के वैश्वीकरण ने बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में यह तीव्र इच्छा पैदा की कि एशिया पैसीफिक देशों और दुनिया के अन्य भागों में फैले भ्रष्टाचार को खत्म करने के उपाय खोजे जायें'।

विश्व बैंक ने एक 'भ्रष्टाचार विरोधी जानकारी केन्द्र' कायम किया। अक्टूबर 2003 में संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में 'भ्रष्टाचार विरोधी समझौता' हुआ जिसका अनुमोदन करने वाले सदस्य देशों के लिए इसके प्रावधान कानूनी तौर पर बाध्यकारी भ्रष्टाचार विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय उपकरण थे। इस पर 140 देशों ने हस्ताक्षर किये। भारत ने 2005 में इस समझौते पर हस्ताक्षर किया और 2011 में इसका अनुमोदन किया।

मोटे तौर पर भ्रष्टाचार को दो तरह से परिभाषित किया जाता है। पहला, इसके संकुचित शाब्दिक अर्थ में, अर्थात् 'छुद्र, गली-मोहल्ले के स्तर का', 'रोजमर्रा के कामों में' या 'छिट-पुट' होने वाला भ्रष्टाचार। इसे व्यापक तौर पर रिश्वत से जुड़ा माना जाता है। दूसरा, 'दानवी स्तर का' भ्रष्टाचार है जो बड़े घोटालों या संसाधनों के ऐसे हस्तान्तरण से सम्बन्धित है जिसमें नेता, नौकरशाह और बड़े व्यापारिक समूह शामिल हों। भ्रष्टाचार की आमतौर पर प्रचलित परिभाषा-- 'निजी फायदे के लिए सार्वजनिक पद का दुरूपयोग'-- भ्रष्टाचार के संकुचित अर्थ से ही सम्बन्धित है जिससे हम कौटिल्य के जमाने से ही परिचित हैं। इस किस्म के भ्रष्टाचार की व्यापकता उस समय भी थी-- ''जिस तरह जीभ पर रखा शहद (या जहर) का स्वाद लेने से नहीं बचा जा सकता, उसी तरह एक सरकारी मुलाजिम के लिए या कम से कम उसके एक हिस्से के लिए चोरी के प्रलोभन से बच पाना भी असंभव है। जिस तरह यह पता करना संभव नहीं कि जल में विचरती मछली ने पानी पिया या नहीं वैसे ही यह पता लगाना भी संभव नहीं है कि सार्वजनिक काम में लगे किसी सरकारी मुलाजिम ने पैसा खाया है अथवा नहीं।''

बहुत लम्बे समय तक भ्रष्टाचार को इसी संकुचित अर्थ में समझा जाता रहा है और अधिकांशतः जब लोग भ्रष्टाचार के बारे में बात करते हैं तो पुलिस विभाग, राजस्व विभाग, व्यावसायिक करों और वन विभाग के कर्मचारियों को या बिजली-पानी जैसी सार्वजनिक सेवाओं के लिए दी जाने वाली रिश्वत से ताल्लुक रखता है।

लेकिन पिछले तीन दशकों के दौरान आम जनता में व्याप्त भ्रष्टाचार की अवधारणा में धीरे-धीरे एक बदलाव आया है जो 'छोटे स्तर के' भ्रष्टाचार से 'दैत्याकार' भ्रष्टाचार की ओर है। 'वांशिगटन आम सहमति' के बैनर तले दुनिया भर में थोपे गये व्यापक 'ढाँचागत समायोजन कार्यक्रमों' के परिणामस्वरूप विकास की रणनीति का राज्य नियंत्रित अर्थव्यवस्था से निगमीकृत अर्थव्यवस्था में संक्रमण हुआ जिसने प्राकृतिक संसाधनों और प्रमुख औद्योगिक और आधारभूत क्षेत्रों को निजी पूँजी

की लूट के लिए खोल दिया। भ्रष्टाचार में हुए इस 'समग्र' बदलाव-- आम जिन्दगी के 'छोटे', 'रोजमर्रा के छिटपुट' या 'स्थानीय' पैमाने के भ्रष्टाचार की जगह 'दैत्याकार' घोटाले के रूप में भ्रष्टाचार की जड़ निजीकरण ही है। यह कैसी विडम्बना है कि आर्थिक सुधारों से न तो प्रतियोगिता आयी न दक्षता बल्कि 'भाई-भतीजावादी पूँजीवाद' का जन्म हुआ जिसमें प्राथमिकता के नाम पर बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधनों का कौड़ियों के दाम में 'अपनों' को अलाटमेन्ट कर दिया जाता है, या आधारभूत ढाँचें मसलन राजमार्ग, हवाई अड्डों और बन्दरगाहों के ठेके हथिया लिए जाते हैं और बिजली, पानी और दूरसंचार जैसी सार्वजनिक उपभोग की सेवाओं का निजीकरण कर दिया जाता है। सबसे ज्यादा मारा-मारी सामाजिक महत्त्व की सेवाओं-- शिक्षा, इलाज इत्यादि में निजी लूट के रास्ते खोलने को लेकर देखी गयी। यह विरोधाभासी लग सकता है कि निजीकरण और उदारीकरण का सम्पूर्ण सैद्धान्तिक आधार इस प्रस्थापना पर टिका था कि अर्थव्यवस्था के राज्य या सार्वजनिक क्षेत्र की कमान में रहने का परिणाम नियम-कानूनों और नियंत्रणों की अधिकता को जन्म देता है। जैसे लाइसेंस राज जो 'लगान वसूली' की तरफ ले जाता है अर्थात् व्यवसाय शुरू करने की अनुमति या लाइसेंस पाने के लिए रिश्वत के रूप में भ्रष्टाचार जिसका परिणाम 'प्रत्यक्ष रूप से अनुत्पादक मुनाफा कमाना' के रूप में होता है। अतः यह तर्क दिया गया कि राज्य को प्रत्यक्ष आर्थिक गतिविधियों से हट जाना चाहिए और इसकी जगह निजी क्षेत्र को नियंत्रित करने के लिए एक नियामक प्रणाली बनानी चाहिए।

लेकिन वास्तव में नवउदारवादी सुधारों ने व्यापक 'भाई-भतीजावादी पूँजीवादी' को जन्म दिया जिसमें कुछ शक्तिशाली निहित स्वार्थ अपने फायदे के लिए राज्य मशीनरी पर कब्जा जमा लेते हैं-- इस प्रक्रिया को 'राज्य पर कब्जा' या 'नियामक प्रणाली पर कब्जा' के नाम से जाना जाने लगा है। पूँजी 'विशेष आर्थिक क्षेत्र' जैसी नीतिगत रणनीतियाँ बना सकती है। 'भाई-भतीजावादी पूंजीवाद' कानूनों को जाने बूझे तरीके से अपने हित के अनुसार 'ढालने' की क्षमता रखता है। और सार्वजनिक हितों को नुकसान पहुँचाता है। जब व्यावसायिक निहित स्वार्थ कानूनी, राजनीतिक या नियामक वातावरण को अपने हिसाब से ढालने और जनहित में बनी नीतियों को विकृत करने में सफल हो जाते हैं, तो इससे उन्हें भ्रष्टाचार के असीमित अवसर मिल जाते हैं। इस प्रकार आर्थिक सुधार और उनसे उपजा 'भाई-भतीजावादी पूँजीवाद' ही भ्रष्टाचार के दैत्याकार घोटाले के स्तर पर पहुँचने की असल वजह है। इसने लोगों में भ्रष्टाचार की अवधारणा को बदला है और भ्रष्टाचारियों के प्रति घोर नफरत पैदा की है।

भ्रष्टाचार का वस्तुगत आकलन बहुत मुश्किल है। सबसे भ्रष्ट लेन-देन परदे के पीछे होते हैं और उसमें शामिल सभी भ्रष्टाचारियों का हित उन्हें छिपाये रखने में ही होता है। लेकिन 'दैत्याकार' घोटालों को छिपाना अक्सर कठिन होता है और प्रायः मीडिया उसे सनसनीखेज बनाने के लिए अरबों रूपये के इन अनैतिक घोटालों पर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित कर देता है। उदारीकरण के बाद भारत में ऐसे बहुत से घोटाले प्रकाश में आये हैं। 21वीं सदी की शुरुआत से अभी तक के एक ब्यौरे के मुताबिक सबसे बड़े भ्रष्टाचार के ऐसे 28 स्कैंडल अब तक सामने आ चुके हैं जिसमें लाखों करोड़ रूपये के घोटाले हुए हैं। इनमें प्रति घोटाला औसतन 36000 करोड़ रूपये का हुआ। इन घोटालों में केन्द्र सरकार में बैठे लोगों से लेकर राज्य सरकारों और विभिन्न राजनीतिक दलों के लोग शामिल रहे हैं। लेकिन इन घोटालों के पूरे दौर में केन्द्र सरकार में सबसे लम्बे समय तक संप्रग (यूपीए) की सरकार रही। शायद नवउदारवादी शासन के हाल के इतिहास में भ्रष्टाचार के स्कैंडल पहले कभी इतनी गगनचुम्बी ऊँचाईयों तक नहीं पहुँचे थे, न ही कभी मीडिया का इनकी तरफ इस कदर ध्यान गया था। यही वजह है कि संप्रग की अगुवा कांग्रेस पार्टी के खिलाफ लोगों के दिलों में नफरत इतनी गहरी हो गयी।

यहाँ कुछ चुनिन्दा घोटालों की एक बानगी पेश है जो आर्थिक सुधारों के परिणामस्वरूप सामने आये 'भाई-भतीजावादी पूँजीवाद' के क्लासिक उदाहरण माने जाते हैं। हमारी राष्ट्रीय चेतना के लिए यह बहुत बड़ा आघात था कि हमारी आँखों के सामने हमारे बुनियादी प्राकृतिक संसाधनों जैसे धरती (जमीन और कोयला खानें) जल (पानी और जल विद्युत परियोजनाएँ), वायु (टू जी) और समुद्र (तेल के कुँएँ) की बेशुमार दौलत को निगमों और राजनीतिक निहित-स्वार्थों की खातिर कौड़ियों के मोल नीलाम कर दिया गया। 2012 में हुए कोयला घोटाले में सार्वजनिक खजाने को अनुमानतः एक लाख छियासी हजार करोड़ का नुकसान हुआ। देश के महालेखाकार की रिपोर्ट में कोयले की 194 खानों की नीलामी में बरती गयी अनियमितताओं का खुलासा किया गया।

अरूणाचल प्रदेश में जल विद्युत परियोजनाओं के विकास के नाम पर 2013-15 के बीच केन्द्र व राज्य सरकारों और बड़े पूँजीपतियों के बीच करीब 160 समझौतों पर हस्ताक्षर हुए जो सार्वजनिक निजी भागीदारी (पीपीपी) के रूप में थे। राजनीतिक नेतृत्व, बड़े निगमों और नौकरशाही की मिलीभगत से इन परियोजनाओं के औचित्य और पर्यावरण पर पड़ने वाले इनके प्रभावों को लेकर जन-सुनवाई में उठे

सवालों को धता बताते हुए इन्हें अनुमति प्रदान कर दी गयी।

2008 में हुआ टू जी स्पैक्ट्रम घोटाला भारत के दैत्याकार घोटालों में से एक था। महालेखाकार परीक्षक के अनुमान के मुताबिक इस घोटाले से सरकार को 1 लाख 76 हजार करोड़ का चूना लगा। समुद्र के भीतर तेल के कुँओं का रिलायन्स को आवंटन और भुगतान की किश्तों में घपलेबाजी से सरकारी खजाने को साल-दर-साल हजारों करोड़ रूपये का नुकसान हुआ जिसके खिलाफ अक्सर जनहित याचिकाएँ दायर हुईं जिन पर फैसले टलते रहे। 2010 में कामनवेल्थ घोटाले में कांग्रेस के नेताओं, नौकरशाहों और बड़े निगमों के बीच कई हजार करोड़ रूपये की बन्दरबाँट हुई। 2014 में संप्रग सरकार के अन्त तक आते-आते जनता भ्रष्टाचार को संकुचित रोजमर्रा के छिटपुट और स्थानीय भ्रष्टाचार से 'पूर्णत:' अलग 'दैत्याकार' घोटालों के रूप में समझने लगी थी। 'छिटपुट' रिश्वत के रूप में भ्रष्टाचार का 'दैत्याकार' घोटालों में बदलना सिर्फ राष्ट्रीय सत्ताधारी पार्टियों तक सीमित नहीं था बल्कि राज्यों में भी यही हो रहा था। महालेखाकार परीक्षक के आरोप के मुताबिक आन्ध्रप्रदेश सरकार ने 2006-11 के बीच 1784 करोड़ रूपये की 90000 एकड़ जमीन को निजी कम्पनियों और व्यक्तियों को आवंटित करने में भारी अनियमिताएँ बरतीं। तदर्थ स्वेच्छाचारी और मनमाने तरीके से औने-पौने दामों पर आवंटन कर दिया गया और इसके एवज में तत्कालीन मुख्यमंत्री के पुत्र की कम्पनियों में निवेश करवाया गया।

ऐसा नहीं है कि अधिकांश जनता के रोजमर्रा के जीवन के अनुभव से 'छिटपुट' भ्रष्टाचार गायब हो गया है। इसके विपरीत, अनुमानों के अनुसार अभी भी जनता से छोटे स्तर पर जबरन वसूली जाने वाली रिश्वतों की कुल राशि 'दैत्याकार' घोटालों के बराबर या उससे कहीं ज्यादा है। लेकिन लोगों का गुस्सा और नफरत पूरी तरह से घोटालेबाजों के खिलाफ केन्द्रित हो गया है जिसके दूरगामी राजनीतिक निहितार्थ हैं। भ्रष्टाचार के खिलाफ गोलबन्दी घोटालों के विरोध में मध्यवर्ग और गरीब जनता की प्रतिक्रिया पर आधारित थी। जिसे अन्ना हजारे केजरीवाल और उनके सहयोगियों और समर्थकों द्वारा शुरू किये गये इंडिया अगेंस्ट करप्शन (भ्रष्टाचार के खिलाफ भारत) आन्दोलन संप्रग के दूसरे शासनकाल के अंतिम वर्ष में भारी भरकम भ्रष्टाचार के स्कैंडलों के सामने आने के बाद 2010 में ही जोर पकड़ा।

राष्ट्र के भीतर बना यह व्यापक भ्रष्टाचार विरोधी मूड ही भारतीय जनता पार्टी जैसी प्रमुख पार्टियों के लिए वह सुनहरा मौका था जिसके दम पर वे सत्ता के गलियारों

में पहुँच सकती थीं। इसके लिए उन्हें एक ऐसे जननेता की दरकार थी जो लोगों की कल्पनाशीलता में पैठ बना सके और लोगों में यह विश्वास पैदा कर सके कि वह राष्ट्र को भ्रष्टाचार के कोढ़ से मुक्ति दिलायेगा। नोटबन्दी के हथियार से भ्रष्टाचार और कालेधन का विनाश करने की पूरी संकल्पना के पीछे राजनीतिक बाजीगरी का यही तत्व मौजूद था। एक बाजीगर की तरह आम जनता की नजर से भ्रष्टाचार की असल वजह को ओझल रखा गया-- अर्थात, आर्थिक सुधार जिनके शुरू होने के बाद ही भ्रष्टाचार का विस्फोट हुआ। लोगों को यह यकीन दिलाया गया कि सारे भ्रष्टाचार की जड़ में एक ही राजनीतिक पार्टी है और यह कि भ्रष्टाचार की सारी कमाई कालेधन के भंडारों के रूप में तह लगाकर रखी गयी है। यह सब इसके बावजूद हुआ कि यथार्थ इसके बिल्कुल विपरीत था।

भ्रष्टाचार की कमाई कैसे रखी जाती है? उदाहरण के लिए हम एक नेता द्वारा भ्रष्ट तरीके से की गई भारी भरकम कमाई का वास्तविक उदाहरण लेते हैं कि उसने उस काली कमाई का क्या किया? झारखण्ड के भूतपूर्व मुख्यमंत्री मधुकोड़ा को 2009 में गिरफ्तार किया गया और उन पर सफलतापूर्वक मुकदमा चलाकर सजा दी गयी। इस मुकदमे के दौरान पता चला कि उसकी काली कमाई 700 शेल कम्पनियों में लगी थी। इसके अलावा खानों, एक समुद्री टापू, जमीन, लोहा उद्योग, उसके चुनाव क्षेत्र के निजी कालेजों, पंजाब और हरियाणा जैसे सुदूर राज्यों में ट्रकों और परिवहन, दिल्ली और पूरी के होटलों, एक थीम पार्क, शराब के कारखानों, प्रिंट मीडिया और टीवी चैनलों में भी इस काली कमाई का निवेश किया गया था। इस प्रकार अधिकांश काली कमाई अर्थव्यवस्था में लगकर सफेद हो जाती है। फिर कौन सा वह कालाधन है जो नोटबन्दी से बाहर आयेगा?

कालेधन के प्रवाह को स्थिर भण्डार के रूप में देखने का मिथक

आइये, अब कालेधन की प्रकृति के बारे में कुछ पहले से ज्ञात बुनियादी बातों पर एक सरसरी निगाह डाल ली जाये। यह किन स्रोतों से पैदा होती है, किन रूपों में, इसे रखा जाता है और इसके रोकथाम के साधन क्या हैं? सीधी भाषा में 'कालाधन' वह धन है जिस पर टैक्स नहीं भरा गया। एक इतनी ही महत्त्वपूर्ण और सीधी सी बात यह भी है कि कालाधान प्रवाहमान होता है, इसकी जमाखोरी नहीं होती यानी इसे एक झटके में न तो कब्जे में लिया जा सकता है और न ही खत्म किया जा सकता है और

न ही हिसाब में लगाया जा सकता है। भारत की अर्थव्यवस्था में 'कालेधन' की मौजूदगी कोई नयी बात नहीं है। लेकिन यह एक नयी परिघटना है कि 1990 के दशक में हुए आर्थिक सुधारों के परिणामस्वरूप आश्चर्यजनक रूप से इसकी मात्रा बढ़ गयी है। समय-समय पर देश में मौजूद काली अर्थव्यवस्था और 'काली कमाई' के बारे में कयास लगाये जाते रहे हैं। राष्ट्रीय आय की तरह ही सालाना कुल कितना ''कालाधन'' पैदा हुआ यही अनुमानित किया जाता है क्योंकि कालाधन कोई नकद खजाना नहीं होता इसलिए सालभर में पैदा हुआ यह कालाधन विभिन्न प्रकार के लेनदेन और निवेशों में सफेद धन की तरह इस्तेमाल होने के रास्ते ढूँढ लेता है। क्योंकि इन सभी छद्म गतिविधियों का हिसाब-किताब इनकी कुछ विशेषताओं के आधार पर किया जाता है। इसलिए कालेधन के आँकलन में बहुत ज्यादा भिन्नता हो सकती है।

विश्व बैंक के मुताबिक, 2007 में भारत की कुल अर्थव्यवस्था का 23 प्रतिशत कालाधन था। क्योंकि इस बात के कोई 'विश्वसनीय' आँकड़े नहीं थे कि भारत में कुल कितना कालाधन पैदा हुआ और उसका कितना हिस्सा देश में था और कितना देश के बाहर भेज दिया गया। संप्रग सरकार ने 'कालेधन' का आँकलन करने के लिए नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेन्स एण्ड पॉलिसी को कमान सौंपी। हालाँकि इसने दिसम्बर 2013 में ही अपनी रिपोर्ट वित्त मंत्रालय को सौंप दी थी। तत्कालीन वित्त मंत्री ने इसे सदन के पटल पर नहीं रखा। न ही उनके बाद आये अरूण जेटली ने ऐसा किया। लेकिन अनधिकृत स्रोतों से पता चलता है कि 2012 में देश के सकल घरेलू उत्पाद का 75 प्रतिशत कालाधन था। इसका अधिकांश सोने, जमीनों, रीयल इस्टेट, शेयरों, स्टॉक मार्केट में निवेश किया हुआ था या विदेशी खातों में जमा था।

कुछ अनुमानों के मुताबिक 'कालेधन' का केवल 6 प्रतिशत ही नकद के रूप में रखा गया है। कालाधन कानूनी और गैरकानूनी आर्थिक गतिविधियों, जो हमारी सामाजिक आर्थिक गतिविधियों का हिस्सा है, के एक हिस्से के रूप में सतत प्रवाहमान रहता है। टैक्स नेटवर्क से बचकर निकलने वाले कालेधन के कुछ गैरकानूनी स्रोतों में स्मगलिंग, गैर कानूनी खरीद-फरोख्त, दवाओं और वेश्यावृत्ति के अवैध कारोबार और आपराधिक लूट-खसोट शामिल है। आँकलनों के मुताबिक आपराधिक और गैर कानूनी स्रोतों से पैदा होने वाला कालाधन कुल काली कमाई का महज एक छोटा हिस्सा भर है। दरअसल लगभग तीन चौथाई कालाधान वैध गतिविधियों उत्पादन सेवाओं, वित्तीय और व्यापारिक गतिविधियों के जरिये पैदा होता है।

कीमतों में जोड़-तोड़, वेतन सम्बन्धी आँकड़ों की तोड़-मरोड़ और उत्पादन को कम करके दिखाने के जरिये निजीकृत सार्वजनिक सेवाओं जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं से होने वाली कमाई और मुनाफे को कम करके दिखाया जाता है। इस तरह की संस्थाओं को मिलने वाले गुप्त डोनेशन, छात्रों से वसूली जाने वाली कैपीटेशन फीस और अन्य अघोषित शुल्क कालेधन के बड़े स्रोत बन गये हैं। सरकारी सेवाओं जैसे पुलिस, राजस्व, जंगलात आदि में होने वाला भ्रष्टाचार इन विभागों में चलने वाली तथाकथित रिश्वत की जानी पहचानी वजह है। भ्रष्टाचार के इन फुटकर रूपों के अलावा ऊपर वर्णित दैत्याकार घोटालों के रूप में भी भ्रष्टाचार होता है। जिसके जरिये प्राकृतिक संसाधनों जैसे जमीन, खानों और आधारभूत ढाँचे से सम्बन्धित ठेकों को हथियाने का काम किया जाता है। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और वित्तीय लेन-देनों के जरिये होने वाली कमाई के बारे में आम जनता की समझ सबसे कम है।

बिलों में 'धोखाधड़ी' और कालाधन

नोटबन्दी के बाद की बहसों में कालेधन का एक प्रमुख स्रोत, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितने का वह हकदार था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किस प्रक्रिया में संसाधनों को विदेशों में उड़ा ले जाने और अक्सर टैक्स फ्री देशों में सबकी नजर बचाकर पहुँचा देने का जरिया बनता है, इस पर ज्यादा चर्चा नहीं हुई। इसलिए यहाँ कुछ ऐसे तथ्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं जो अकादमिक और प्रशासनिक दायरों में सर्वविदित हैं। 'हवाला' के जरिये होने वाले लेन-देन और भुगतान संतुलन के जरिये आने वाली अवैध 'हॉट मनी' के अलावा विकासशील देशों में होने वाले 'अवैध वित्तीय प्रवाह का लगभग 80 प्रतिशत' बिलों में धोखाधड़ी के जरिये होता है। काफी लम्बे समय से बिलों की धोखाधड़ी (आयात की ज्यादा कीमत दिखाना और निर्यात की कम) के जरिये होने वाली काली कमाई का अनुमान लगा पाना काफी मुश्किल बना हुआ था क्योंकि हजारों खरीद-बिक्री होने वाली वस्तुओं के वास्तविक मूल्य और बिल में दिखायी गयी कीमत का मिलान करके काली कमाई के आँकड़ें जुटाना एक बेहद जटिल काम था। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष द्वारा व्यापारिक लेन देन के विस्तृत आँकड़ों के सामने आने के बाद अमरीका स्थित एक थिंकटैंक--ग्लोबल फाइनेन्सियल इंटीग्रिटी ने 2003 के बाद से विकासशील देशों से हुए इस 'अवैध वित्तीय प्रवाह' का काफी हद तक एक विश्वसनीय आकलन पेश किया है।

'अवैध वित्तीय प्रवाह' से तात्पर्य उस धन के लेन-देन से है जिसे गैरकानूनी तरीके से कमाया और प्रयोग में लाया जाता है। इसके अन्दर बहुत सारी गतिविधियाँ आती

हैं-- अधिकारियों का भ्रष्टाचार, आपराधिक तरीके से अर्जित मुनाफे की मनीलांड्रिंग, आतंकवाद को फाइनेन्स करना और टैक्स की चोरी। 'व्यापारिक बिलों में धोखाधड़ी' या आयात की वस्तुओं की ज्यादा कीमतें और निर्यात की वस्तुओं की कम कीमतें दिखाना टैक्स चोरी का एक ऐसा तरीका है जिसमें व्यावसायिक बिलों में वस्तुओं के दाम गलत दर्ज करके धोखाधड़ी की जाती है। आमतौर पर प्रयोग किया जाने वाला यह एक ऐसा तरीका है जिसके जरिये विकासशील देशों के रसूखदार लोग या निगम आयात-निर्यात पर लगने वाले शुल्क की चोरी करते हैं, अपनी आय को छिपाते हैं और विदेशी मुद्रा में लेन-देन पर लगे नियंत्रणों को धता बताकर अपनी काली कमाई को विकसित देशों या ऐसे देशों में ले जाकर रखते हैं जहाँ टैक्स नहीं है। व्यापार के बिलों में धोखाधड़ी अपराध और भ्रष्टाचार के जरिये अर्जित कालेधन को ठिकाने लगाने का भी एक प्रचलित तरीका है जिसे व्यापार आधारित मनीलांड्रिग कहा जाता है।

'बिलों में धोखाधड़ी' के दो रूप हैं-- 'निर्यात की कीमत कम दिखाना', जिसके जरिये निर्यात से होने वाली आमदनी के उस हिस्से पर परदा डाला जाता है जिसे गुप्त विदेशी खातों में जमा करके रखा गया है। इसके साथ-साथ, निर्यात की आय कम दिखाने से मुनाफा घट जाता है और इस वजह से अपने देश में टैक्स की बचत होती है। इसी प्रकार 'आयात की कीमत बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने' से घरेलू बाजार में लागत ज्यादा पड़ती है और बैलेंस सीट (बहीखाते) में मुनाफा कम दिखता है जिससे उतना टैक्स बच जाता है। साथ ही भुगतान की बढ़ाकर दिखायी गयी रकम गुप्त विदेशी खातों में जमा कर दी जाती है। एक रिपोर्ट के मुताबिक 2014 में दुनिया भर में सामने आये बिलों की धोखाधड़ी के मामलों में से आधे भारत से थे।

ग्लोबल फाइनेन्सियल इंटीग्रिटी नामक संस्था के आँकलन बताते हैं कि 2003-2012 के बीच 10 सालों में विकासशील देशों से हुए इस अवैध कारोबार के जरिये कुल 6.6 लाख करोड़ डॉलर की धोखाधड़ी की गयी। इस दौरान इस अवैध कारोबार में अग्रणी रहे 5 प्रमुख देश थे-- चीन, रूस, मैक्सिको, भारत और मलेशिया। 2009 में भारत में इस अवैध कारोबार में उछाल आया और वह पाँचवें पायदान से ऊपर उठकर चौथे पायदान पर आ गया। 2003-12 के दस सालों में इस अवैध वित्तीय कारोबार के जरिये भारत से कुल 440 अरब डॉलर या लगभग 30 लाख करोड़ रूपये बाहर गये जो सालाना औसतन 44 अरब डॉलर या 3 लाख करोड़ रूपया बैठता है। यह सब वही है जिसे 'कालाधन' कहा जाता है पर इसका कोई हिस्सा भारतीय मुद्रा या भारतीय बैंक खातों में जमा नहीं है।

व्यापार में वस्तु की 'गलत कीमत' के बिल बनाकर धोखाधड़ी करने के इस तरीके को समझने के लिए आइये एक ऐसे केस पर गौर करते हैं जिसकी अभी जांच चल रही है। अडानी समूह की कम्पनियों का यह मामला आयात की कीमतों को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने का एक नमूना है जिसके जरिये बेशुमार मुनाफा कमाया गया और टैक्स की चोरी करके इस काली कमाई को विदेशी बैंक खातों में ठिकाने लगा दिया गया। महाराष्ट्र में दो विद्युत संप्रेषण नेटवर्क विकसित करने के ठेके से सम्बन्धित यह मामला एक आदर्श उदाहरण है जिसके जरिये हम ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम के नाम पर सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों में किये गये तथाकथित सुधारों के दौरान हुए भ्रष्टाचार को समझ सकते है। पहले, बिजली निगमों को उदारीकरण के तहत तीन हिस्सों में बांटा गया-- उत्पादन, संप्रेषण और वितरण और फिर निजीकरण के तहत इन्हें काली कमाई का उपजाऊ स्रोत बनाया गया।

लेकिन, अभी हम केवल उन ठेकों की बात करेंगे जो संप्रेषण नेटवर्क विकसित करने के लिए अडानी को दिये गये। राजस्व निदेशक की जाँच की 97 पेज की रिपोर्ट के आधार पर 15 अगस्त 2017 के गार्डियन अखबार ने उन पूरी तफसीलों को छापा जिनके तहत आयात की कीमतें बढ़ा-चढ़ाकर दिखायी गयीं और टैक्स की चोरी और अकूत ''काली कमाई'' की गयी।

सरल शब्दों में इस पूरे केस का ब्यौरा इस प्रकार है-- 2010 में अडानी की कम्पनी को उत्तरपूर्वी महाराष्ट्र में विद्युत-संप्रेषण नेटवर्क विकसित करने के लिए दो ठेके दिये गये। इस कम्पनी ने अपनी ही एक उप-कम्पनी पीएमसी प्रोजेक्ट्स को जरूरी साजो-सामान मुहैया करवाने का काम सौंपा। पीएमसी ने आगे यह ठेका दुबई की एक कम्पनी ईआईएफ को दे दिया। ईआईएफ ने इस साजो-सामान को दक्षिण कोरिया और चीन से खरीदा और भारत में पीएमसी को बेचा। ईआईएफ ने हुण्डई हैवी इण्डस्ट्रीज को लगभग 26 आर्डर दिये और 6.5 करोड़ डॉलर के सामानों की खरीद की तथा आगे 26 करोड़ डॉलर में उन्हें पीएमसी को बेचा। इस तरह लगभग 400 प्रतिशत से ज्यादा पर माल बेचा गया। ईआईएफ ने कुछ उपकरण चीनी कम्पनियों से भी खरीदे और उन्हें 860 प्रतिशत ज्यादा दामों पर पीएमसी को बेचा। इस तरह बिलों में आयात की कीमतें बढ़ाकर अनुमानतः 1500 करोड़ की काली कमाई की गयी।

इस लेन-देन की सारी रकम का भारतीय कम्पनी ने भारतीय बैंकों से लम्बे चौड़े ऋण लेकर भुगतान किया। इस तरह दुबई की कम्पनी को साफ तौर पर मुनाफा हुआ लेकिन वहाँ टैक्स बहुत कम थे। दूसरी ओर महाराष्ट्र में संप्रेषण नेटवर्क की लागत

बहुत ज्यादा बढ़ गयी और जनता पर बिजली की बढ़ी हुई कीमतों के रूप में अतिरिक्त बोझ पड़ा। अब देखते हैं कि अडानी की कम्पनी को क्या मिला? ईआईएफ पर अडानी का सीधा नियत्रंण था क्योंकि इसकी मालिक अडानी समूह की एक और कम्पनी ईआईएच थी जिसकी मालिक मारीशस स्थित असाक्य रिसोर्स फैमिली ट्रस्ट थी जिसका प्रमुख अडानी का ही एक भाई है।

गौरतलब है कि काली कमाई के इस अवैध कारोबार में लगे तमाम लोगों ने अपने इस काले धन को स्विस बैकों जैसे टैक्स चोरों के स्वर्ग में जमा करके नहीं रखा हुआ है। इसके बजाय वे इसे 'घुमावदार रास्ते' से वापस लेकर आते हैं और घरेलू बाजार और स्टॉक एक्सचेंज में और ज्यादा मुनाफे के लिए सफेद धन के तौर पर निवेश करते हैं। 1983 में भारत सरकार ने मॉरीशस के साथ 'दोहरी कर छूट' का समझौता किया था जिसके तहत यदि मॉरीशस में रजिस्टर्ड कोई कम्पनी भारत में अपने मुनाफे या पूँजी निवेश पर वहाँ टैक्स चुकाती है, तो उसे भारत में अलग से टैक्स भरने की जरूरत नहीं।

1980 के दशक की शुरुआत में, भारत के वित्तीय बाजार और शेयर मार्केट विदेशी निवेश के लिए खुले नहीं थे, इसलिए इन बाजारों में निवेश कुछ खास लाभकारी नहीं था। लेकिन उदारीकरण और आर्थिक सुधारों के शुरू होने के साथ ही भारत सरकार ने देश के वित्तीय और शेयर बाजारों को विदेशी संस्थागत निवेशकों (एफआईआई) के लिए खोल दिया और देश की अर्थव्यवस्था में आसान शर्तों पर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) की इजाजत दे दी।

स्टॉक मार्केट में संस्थागत निवेश को और प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार ने मॉरीशस की तर्ज पर सिंगापुर और साइप्रस से भी दोहरे कर छूट के समझौते किये। वित्तीय बाजारों के खुलने के साथ ही भारतीय शेयर बाजार में निवेशकों के विदेशी खातों और फर्जी विदेशी कम्पनियों की संख्या तेजी से बढ़ गयी। 'बिलों में धोखाधड़ी' हवाला कारोबार और अन्य गैर-कानूनी तरीकों से की गयी काली कमाई मारीशस, सिंगापुर और साइप्रस जैसे कई टैक्स चोरों के स्वर्ग देशों में पंजीकृत इन फर्जी कम्पनियों के जरिये एक 'घुमावदार रास्ते' से होती हुई वापस सफेद धन के रूप में भारतीय शेयर बाजार में निवेश होने लगी।

1990 का दशक पी नोट की ईजाद के लिए जाना गया। पी नोट भारतीय पूँजी बाजार में व्यवसाय के लिए पंजीकृत नहीं थे और इनके मालिक या निवेशक की पहचान गुप्त रहती थी। परिणामस्वरूप कोई नहीं बता सकता था कि किसी पी नोट

का असली मालिक कौन है। जहाँ देशी निवेशकों के लिए 'अपने ग्राहक को जानो' (केवाईसी) के तहत कड़े प्रावधान थे, वहीं पी नोट धारकों को इन प्रावधानों में आपराधिक छूट दी गयी। जो लोग अपनी अवैध कमाई को वापस भारतीय बाजारों में ठेल रहे थे, उन्होंने पी नोट के इस उपकरण का भरपूर फायदा उठाया। अधिकांश काला धन पी नोट के रास्ते वापस आया और संस्थागत निवेशकों के साथ जुड़ गया।

फर्जी कम्पनियाँ बनाकर मारीशस में पी नोट खरीदे गये और इन पी नोट के जरिये काला धन घूमकर वापस भारतीय शेयर बाजार में आ गया। कुछ अनुमानों के मुताबिक भारत में हुए संस्थागत निवेश का अच्छा खासा हिस्सा पी नोट के इसी घुमावदार रास्ते से आया था और सब लोग जानते थे कि सारे संस्थागत निवेशक अपने किन्हीं संदिग्ध मुवक्किलों (क्लाइंट) के लिए गुप्त खाता रखे हुए हैं। लेकिन रिजर्व बैंक की बार-बार दी गयी चेतावनियों को भी नजरअन्दाज कर दिया गया। इस पूरी प्रक्रिया में शायद ही कहीं नगदी का इस्तेमाल हुआ, शायद ही कहीं भारतीय खातों में पैसा जमा हुआ। बताइये, नोटबन्दी ने इस अवैध कारोबार पर क्या रोक लगायी?

उत्तर सत्ययुग की राजनीति

जैसा पहले दर्शाया गया है यह विश्वास करना कठिन है कि प्रधानमंत्री भ्रष्टाचार और कालेधन की रोकथाम के मामले में नोटबन्दी की सीमित भूमिका और आम जनता और अर्थव्यवस्था पर उसके दुष्प्रभावों से परिचित नहीं थे। नोटबन्दी को लेकर की जा रही आलोचना किसी खास जानकारी पर आधारित नहीं है बल्कि यह है कि प्रधानमंत्री को इसके पहले विशेषज्ञों की राय लेनी चाहिए थी और इस बात के सबूत हैं कि उन्हें ऐसी सलाह मिली थी। ऐसा हो सकता था कि प्रचलन के बाहर किये गये नोटों के बैंक खातों में वापस जमा होने के बारे में आँकलन कुछ बढ़ा-चढ़ाकर कर लिया गया और इसके दुष्प्रभावों को कम करके आंका गया। लेकिन यह निश्चित है कि प्रधानमंत्री के पास इसके दुष्प्रभावों के बारे में अच्छी खासी और पर्याप्त जानकारी थी तब फिर उन्होंने यह कदम क्यों उठाया? जिससे कुछ लोगों का मानना है कि प्रधानमंत्री की छवि कुछ धूमिल हुई। इस बात का उत्तर खोजने के लिए हमें परम्परागत आर्थिक व्याख्याओं के परे जाकर उत्तर सत्य युग की राजनीति की प्रकृति पर गौर करना होगा।

ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी डिक्शनरी हर वर्ष 'साल का एक अन्तर्राष्ट्रीय शब्द' चुनती है और 2016 में इसने जिस शब्द को यह खिताब दिया वह था-- 'उत्तर सत्य'। उत्तर सत्य को इस तरह परिभाषित किया गया है 'उन परिस्थितियों से सम्बन्धित या उन्हें

दर्शाने वाला जिनमें जनता की राय बनाने में वस्तुगत तथ्य भावुक अपीलों और निजी मूल्य मान्यताओं की अपेक्षा कम प्रभावी होते है।' इस सन्दर्भ में, सत्य जिसका मतलब है दुनिया को वैसा ही दिखाना जैसी वह वास्तव में है, महत्त्व खो देता है। अत: जब एक बार लोगों के दिमाग में यह बात बैठ गयी कि भ्रष्टाचार का मतलब दैत्याकार घोटाले और एक बार जब लोगों को यह विश्वास दिला दिया गया कि घोटालों से अर्जित यह कालाधन नोटों की जमाखोरी करके तिजोरियों में रखा गया है तब इस सच्चाई के सामने आने के बावजूद कि घोटालो की संख्या में आया यह उछाल नवउदारवादी सुधारों का परिणाम है और कि इस काली कमाई का अधिकांश हिस्सा नकद के रूप में नहीं रखा गया है, आम जनता पर कोई फर्क नहीं पड़ा। यही उत्तर सत्य युग का वह 'यथार्थ' है जिसके आधार पर प्रधानमंत्री मोदी ने एक राजनीतिक रणनीति के रूप में नोटबन्दी के जरिये भ्रष्टाचार और कालेधन के उन्मूलन की पटकथा लिखी।

जब बड़े घोटालों ने राजनीति में जगह बनायी और इंडिया अगेंस्ट करप्शन जैसे आन्दोलनों ने भ्रष्ट सरकारों के खिलाफ जनता के गुस्से को गोलबन्द करना शुरू किया, तो यही वह आदर्श परिस्थिति थी जब लोगों की भावनाओं को हवा देकर उनके गुस्से का इस्तेमाल किया जा सकता था। मोदी ने इस सुनहरे राजनीतिक मौके को ताड़ लिया और 2014 के लोकसभा चुनाव के शुरुआत से ही भ्रष्टाचार और कालेधन के खिलाफ हवा बनाना शुरू कर दिया।

2014 के चुनावी घोषणा पत्र में बीजेपी ने भ्रष्टाचार और कालेधन को अपने ''फौरी'' कार्यक्रम का मुख्य हिस्सा बनाया। जिसकी शुरुआत इस आरोप के साथ हुई, ''कांग्रेसनीत संप्रग सरकार में सर्वग्रासी भ्रष्टाचार एक राष्ट्रीय संकट'' बन चुका है।' और आगे जोड़ा, ''भ्रष्टाचार के अवसरों को कम से कम स्तर पर लाकर हम काली कमाई को न्यूनतम स्तर पर लेकर आयेंगे।'' बीजेपी इस बात के लिए ''प्रतिबद्ध है कि वह विदेशी बैंको और सुदूर खातों में जमा कालाधन खोज निकालेगी और उसे वापस लेकर आयेगी। इस काम के लिए हम एक टास्क फोर्स गठित करेंगे और मौजूदा कानूनों में संशोधन या नया कानून लायेंगे।''

घोषणापत्र में भ्रष्टाचार और कालेधन के मुद्दे को दी गयी जगह और प्राथमिकता इस मुद्दे पर लोगों के आक्रोश के अनुपात में रखी गयी थी। नरेन्द्र मोदी ने भ्रष्टाचार से लड़ाई के मुद्दे को परखने के लिए एक राष्ट्रव्यापी अभियान शुरू किया। यह दीगर बात है कि हेलीकाप्टरों और चार्टर्ड विमानों के जरिये चला उसका यह हवाई अभियान अडानी जैसे लोगों के पैसे से संचालित था। उसके अभियान का

प्रमुख उद्देश्य लोगों को यह बताना था कि कांग्रेस पार्टी का मतलब है ''भ्रष्टाचार की एबीसीडी''। ए यानी आदर्श घोटाला, बी यानी बोफोर्स घोटाला, सी मतलब कामनवेल्थ घोटाला और डी यानी डिमांड का कारोबार''। उसका मकसद यह दर्शाना था कि भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई उसकी सरकार का प्रमुख एजेण्डा होगी और प्रधानमंत्री दफ्तर में अपने पहले दिन ही 28 मई 2014 को उसने विदेशों में जमा कालेधन की जाँच के लिए कोर्ट के एक रिटायर्ड जज के नेतृत्व में एक विशेष जाँच टीम का गठन किया।

यह सबसे दयनीय बात थी और उत्तर सत्य युग का यथार्थ भी कि इसके बावजूद कि कांग्रेस के घोषणापत्र में 2009-2014 के संप्रग के दूसरे शासनकाल के दौर में बनाये गये 'कानूनी मील के पत्थरों' की लम्बी सूची थी जिनमें खाद्य सुरक्षा कानून, भूमि अधिग्रहण कानून, लैंगिक उत्पीड़न कानून, लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक, शिक्षा का अधिकार, राष्ट्रीय ग्रीन ट्राइब्यूनल, ठेले खोमचे वालों की सुरक्षा और मैला ढोने की प्रथा का उन्मूलन-- इन सबके ऊपर उसकी भ्रष्टाचारी की छवि भारी पड़ी। भ्रष्टाचार का यह किस्सा सोचे-समझे तरीके से इस तरह गढ़ा गया ताकि पिछली सरकार के खिलाफ लोगों के गुस्से और वर्तमान शासन में उनकी मुक्ति की उम्मीदों को बरकरार रखा जा सके।

जैसे-जैसे समय बीता, पार्टी के एजेण्डे ने धीरे-धीरे एक व्यक्ति के एजेण्डे का रूप ले लिया-- प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का एजेण्डा 15 अगस्त 2015 को लाल किले की प्राचीर से बोलते हुए प्रधानमंत्री ने घोषणा की ''मैं निश्चय पूर्वक इस बात को दोहराना चाहता हूँ कि भारत भ्रष्टाचार से मुक्त होगा..., इसकी शुरुआत हमें ऊपर से करनी होगी..., भ्रष्टाचार एक दीमक की तरह है, धीरे-धीरे फैलता है और हर जगह पहुँच जाता है लेकिन समय पर इंजेक्शन लगाकर इसे खत्म किया जा सकता है... बहुत कुछ करना बाकी है... आपके समर्थन से, मैं भारत को भ्रष्टाचार मुक्त करने का प्रण लेता हूँ।'' इस दिशा में कुछ कदम भी उठाये गये मसलन, कड़ी सजा के प्रावधानों के साथ एक 'नया कालाधन विधेयक' लाया गया और घरेलू कालेधन के खुलासे के लिए आय घोषित करने की एक नयी स्कीम लायी गयी। 2015 के बजट में 'मनी लांड्रिग की रोकथाम' के कानून में संशोधन किया गया जिसके तहत उन लोगों की घरेलू परिसम्पत्तियों को कब्जे में लेने का प्रावधान किया गया जिन्होंने विदेशों में अवैध रूप से सम्पत्ति बनायी हुई है। साथ ही मारीशस, सिंगापुर, साइप्रस और स्विटजरलैण्ड के साथ दोहरे कर छूट के समझौतों में संशोधन के लिए बातचीत शुरू करने की भी बात की गयी। यहाँ तक कि सेबी के जरिये संस्थागत निवेशकों के खुराफाती पी नोटों

पर भी लगाम लगाने की कोशिश की गयी।

हालाँकि ये कदम अपने आप में महत्त्वपूर्ण थे लेकिन इनमें से कोई भी लोगों का ध्यान इस ओर खीचने और उनमें यह भावना जगाने में सफल नहीं रहा कि सरकार भ्रष्टाचारियों को पकड़ने और 'कालेधन' को कब्जे में लेने का कोई प्रभावी कदम उठा रही है। इसके साथ-साथ लोगों में यह भावना भी जोर पकड़ती जा रही थी कि सरकार विदेशों में जमा कालेधन को वापस लाने में असफल रही है। यदि इन भावनाओं को और उभरने का मौका दिया जाता तो भ्रष्टाचार विरोधी लहर पर सवारी करके जो राजनीतिक फायदे हासिल किये गये थे वे सभी जाते रहते। लोकप्रियता खोने का खतरा ही वह वजह थी जिसके चलते पूरे पौराणिक चमक-दमक के साथ भ्रष्टाचार और कालेधन के खिलाफ जंग के आख्यान के रूप में नोटबन्दी की घोषणा की गयी।

8 नवम्बर 2016 को नोटबन्दी के निर्णय की घोषणा के लिए जब प्रधानमंत्री खुद सामने आये तो वह पिछले शासन के बरक्स वर्तमान शासन की एक नैतिक रूप से बेहतर छवि गढ़ने की कोशिश कर रहे थे-- मानो पिछली सरकार में बुराइयाँ ही बुराइयाँ थीं और मौजूदा सरकार का प्रमुख काम है समाज में से उन बुराइयों को मिटाना। आगे की प्रक्रिया में यह स्पष्ट हुआ कि सरकार और प्रशासन से ज्यादा, यह खुद मोदी का पवित्र मिशन था। इसमें न सिर्फ संप्रग से जुड़ी हुई भ्रष्टाचार की छवि का पूरा फायदा उठाया गया बल्कि उसकी अनिर्णय की स्थिति, कमजोर नेतृत्व और लकवाग्रस्त नीतियों वाली पार्टी की छवि का भी फायदा बीजेपी को मिला। अपने भाषण की शुरुआत करते हुए मोदी ने कहा ''किसी देश के विकास के इतिहास में एक ऐसा भी वक्त आता है जब एक सशक्त और निर्णायक कदम की जरूरत महसूस होने लगती है'' और यह निर्णायक कदम था नोटबन्दी जिसे भ्रष्टाचार और 'कालेधन' की गिरफ्त को तोड़ने के लिए उठाया गया था।

उन्होंने आगे कहा, ''मैंने अक्सर देखा है कि जब आम आदमी को बेईमानी की कमाई और ईमानदारी के कष्टपूर्ण जीवन के बीच चुनाव करना पड़ता है तो वे हमेशा कष्टपूर्ण जीवन को चुनते हैं और कभी भी भ्रष्टाचार का समर्थन नहीं करते।'' यहाँ तक कि उसने जनता के दिमाग में बनी कालेधन के नकद भण्डारों की छवि को अपील करते हुए फिर वही राग अलापना शुरू कर दिया 'ऐसा कौन ईमानदार नागरिक होगा जिसे भ्रष्ट सरकारी अधिकारियों के पलंगों में करोड़ों रूपये की काली कमाई पकड़े जाने की खबरों को सुनकर पीड़ा नहीं होगी? या बोरों में भरे नोट मिलने की खबरों से कष्ट नहीं होगा? इसलिए भ्रष्टाचार कालेधन, नकली नोटों और

आतंकवाद के साथ इस लड़ाई में हमारे देश के इस शुद्धि यज्ञ में क्या हमारी जनता कुछ दिन कष्ट उठाने के लिए तैयार नहीं होगी? मुझे पूरा भरोसा है कि हर भारतीय इसके खिलाफ खड़ा होगा और इस 'महायज्ञ' में अपनी आहुति देगा।

वह आगे अपील करते हैं... ''दिवाली के त्यौहार के बाद आइये ईमानदारी के इस उत्सव में प्रमाणिकता के इस पर्व में, विश्वसनीयता के इस त्यौहार और सत्यनिष्ठा के इस जश्न में राष्ट्र के हाथ में हाथ डालकर खड़े हों।'' पूरा भाषण दो छवियों को बार-बार एक-दूसरे के बरक्स खड़ा करता है-- एक ईमानदार, साफ-सुथरे, विश्वसनीय और बेदाग सत्यनिष्ठा वाले नेता के रूप में खुद अपनी छवि और एक किंकर्तव्यविमूढ़, पूरी तरह अनैतिक और बेईमान शासन के रूप में पिछली सरकार की छवि। कुछ ही हफ्तों के भीतर जब नोटबन्दी के दुष्प्रभाव सामने आने लगे और लोगों ने अपनी परेशानियों के बारे में शिकायत करना शुरू किया तो उनका समाधान करने के बजाय मोदी ने यह दर्शाने की कोशिश की कि जो लोग उसकी आलोचना कर रहे हैं वे वही भ्रष्ट लोग हैं, ''मैं जानता हूँ कि किस तरह की ताकतें और कौन से लोग मेरा विरोध कर रहे हैं... वे मुझे जिन्दा नहीं छोड़ेंगे वे मुझे बर्बाद कर देंगे।''

वह अपनी रटन्त को फिर दोहराता है, ''....जिन्होंने 70 सालों तक देश को लूटा'' और इसके बरक्स वह दावा करता है, ''मैं एक फकीर हूं जिसे वो बर्बाद करने निकले हैं'' और फिर जोड़ देता है ''वे सोचते थे कि अगर वो मेरे बाल खीचेंगे तो मैं रुक जाऊँगा और कुछ नहीं करूँगा। लेकिन वे चाहे मुझे जिन्दा जला दें, मैं इस लड़ाई को बन्द नहीं करूँगा''।

लगता है कि यह वाक्पटुता काम कर गयी, भावनाएँ जागृत हो उठी अपने नेता और राष्ट्र की 'शुद्धि' या सफाई के उसके संकल्प में लोगों का विश्वास मजबूत हुआ। बहुत से लोग इस बात से हैरान थे कि तमाम कष्टों के बावजूद आलोचकों की वस्तुगत आलोचनाओं पर ध्यान देने के बजाय लोगों ने उसके शब्दाडम्बर पर भरोसा किया।

सांस्कृतिक मानव विज्ञानियों के एक समूह ने यह प्रश्न उठाया ''ऐसा क्यों हुआ कि देश भर में तमाम कष्टों और परेशानियों के बावजूद जनता का गुस्सा व्यापक प्रदर्शनों और गोलबन्दी के रूप में नहीं फूटा। इसके बजाय 2017 के उत्तर प्रदेश के चुनाव में बीजेपी की जीत हुई।'' इसका एक उत्तर यह दिया जाता है कि 1991 के बाद से आर्थिक उदारीकरण के परिणाम स्वरूप नागरिक समाज का क्षरण और ठंडी मौत हो चुकी है जिसके चलते 'निष्क्रिय नागरिकता' की परिस्थितियाँ पैदा हुई हैं। शायद यह सही नहीं है। सच्चाई यह है कि ''उत्तर सत्य युग राजनीति में नवउदारवाद

का उत्पाद है। इसने जनता के बीच एक गहरी खाई निर्मित की है-- एक तरफ विशाल बहुसंख्यक आबादी है जो आर्थिक उदारीकरण में ''पीछे छूट गयी है और दूसरी और मुट्ठी भर लोग हैं जिन्होंने देश की समृद्धि के बड़े हिस्से पर कब्जा कर लिया है'', जिनमें ये घोटालेबाज और कारपोरेट जगत के लोग शामिल हैं।

श्रम साध्य बौद्धिक विश्लेषणों की अपेक्षा आम लोगों के लिए सिर्फ उनकी अपनी अवधारणा और उनका अपना काल्पनिक 'यथार्थ' ही मायने रखता है जिसे लोकप्रिय संचार माध्यम स्थायित्व प्रदान करते हैं और अवसरवादी राजनेता जिसका फायदा उठाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। इस प्रकार यह उत्तर-सत्य का दौर ही है जिसमें भावनात्मक अपीलों और निजी मान्यताओं के आधार पर राय बनायी जा रही है और वस्तुगत तथ्यों का प्रभाव कम हो गया है। दूसरे देशों में भी ''पीछे छूट गये लोगों के साथ यही हो रहा है। अमरीका में, इग्लैण्ड में ब्रेक्सिट जनमत संग्रह के वक्त और यहाँ मोदी के लिए भी। इसके बावजूद कि एक बेहतर विमर्श उसे असफल बता रहा था, आम लोगों की राय में वह स्वीकार्य था क्योंकि उसने कोशिश की। इसके बावजूद कि वह हार गया, चारों ओर बीमारी की हद तक मौजूद धनलोलुपता और भ्रष्टाचार पर प्रहार करके उसने ''पीछे छूट गये लोगों का दिल जीत लिया (ये वही लोग थे जो प्राय: उपहास का विषय बने हुए थे जिन्हें अपने जनधन खातों में कब्जा किये गये कालेधन में से हिस्सा आने का इन्तजार था)''।

एक संवेदनशील राजनीतिक विश्लेषक के मुताबिक मोदी के राजनीतिक विमर्श में तीन महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर गौर किया जाना चाहिए। पहला राजनीति का सदाचारीकरण, दूसरा, राजनीतिक बहसों में भावनाओं को ठेलना और तीसरा, हर बहस को सिर्फ एक सवाल में सीमित कर देना मोदी का समर्थन या विरोध?

हर नीतिगत आलोचना को नेता की आलोचना, उभरते हुए मजबूत और दृढ़ संकल्प नेतृत्व की आलोचना बताकर किनारे कर दिया जाता है। दुर्भाग्य से झूठे विश्वासों को लोगों के दिमाग में बैठाने और उनकी भावनाएं भड़काने में उनकी यह सफलता देश के लोकतांत्रिक ताने-बाने के लिए एक बड़ा खतरा है जो देश को फासिज्म की ओर ले जाता है। फासिज्म का शिकार होने का खतरा इस बात से और गहरा हो जाता है कि नोटबन्दी की तर्ज पर ही आजकल देश में 'राष्ट्रवाद की कथा' चल रही है। तीखे राजनीतिक विश्लेषक जी सम्पत द्वारा जिन बातों की ओर ध्यान दिलाया गया है वे आँखें खोलनी वाली हैं। यह समझने के लिए कि वर्तमान सरकार द्वारा उकसायी जा रही राष्ट्रवादी विचारधारा का फासिज्म से कोई साम्य है अथवा नहीं उन्होंने पीछे जाकर 1935 में प्रकाशित बेनिटो मुसोलिनी की प्रतिनिधि किताब

'फासिज्म का सिद्धान्त' का अध्ययन करने का सुझाव दिया जिसमें फासीवादी विचारधारा के 5 बुनियादी सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं।

पहला और सबसे बुनियादी सिद्धान्त है-- एक व्यक्ति के हितों पर राज्य के हितों को वरीयता देना। (वर्तमान सन्दर्भ में हम राज्य की जगह नेता को भी रख सकते है।) ''जीवन की फासीवादी अवधारणा राज्य के महत्त्व पर जोर देती है और केवल तभी व्यक्ति को मान्यता देती है जब उसके हित राज्य के हितों से मेल खाते हैं।'' वर्तमान सरकार के शासन में इसका क्या आशय है, इसे समझने के लिए अमित शाह से ज्यादा प्राधिकार और किसी का नहीं हो सकता जिन्होंने हाल ही में कहा था, ''...राजग सरकार लोगों की भलाई को ध्यान में रखकर निर्णय लेने में यकीन करती है, यह नहीं देखती कि वे उन्हें अच्छे लगेंगे या नहीं।'' अरूण शौरी की तरह के जो लोग उन्हें अच्छी तरह जानते हैं वे इसे एक ''पिरामिड जैसा माफिया राज्य'' मानते हैं।

फासिज्म का दूसरा सिद्धान्त है-- राष्ट्र के ऊपर राज्य की वरीयता। ''राष्ट्र राज्य को पैदा नहीं करता बल्कि राज्य राष्ट्र का निर्माण करता है।'' क्योंकि हम राज्य और नेता को एक दूसरे की जगह रखकर पढ़ रहे हैं, इसलिए उपर्युक्त कथन की व्याख्या के लिए किसी प्राधिकार की आवश्यकता नहीं है।

तीसरा सिद्धान्त है-- लोकतन्त्र को अस्वीकार करना। ''लोकतंत्र को अस्वीकार करके फासिज्म राजनीतिक समतावाद के वाहियात पारम्परिक झूठ को खारिज कर देता है।'' हालाँकि वर्तमान शासन के कुछ समर्थक यह सोचते हैं कि भारतीय संविधान पश्चिमी मूल्यों पर आधारित है, लेकिन राजनीतिक विमर्श अभी तक लोकतन्त्र को नकारने तक नहीं पहुँचा है। परन्तु निश्चय पूर्वक यह कहा जा सकता है कि भक्तगणों को खुश करने के लिए व्यवस्थित रूप से लोकतंत्र को बदनाम किया जा रहा है। कुल मिलाकर, हमारा लोकतंत्र पहले ही इतना खोखला हो चुका है कि अरूंधति ने इसकी तुलना सामने लटकी 'गाजर' के मुहावरे से की है। जब वह अपने दोस्तों के साथ स्कूल जाती थीं तो वे रास्ते में पड़ने वाले एक बुढ़िया के बगीचे से गाजर उखाड़कर गाजर तो खा लेते थे पर उसके पत्तों को वापस खेत में उसी जगह गाड़ देते थे ताकि उन्हें देखकर बुढ़िया यह समझे कि गाजर सुरक्षित हैं। पहले ही भारतीय लोकतंत्र की 'मुट्ठी भर लोगों का लोकतंत्र' और 'सत्तावादी लोकप्रियतावाद' जैसी कई व्याख्याएं मौजूद हैं।

फासिज्म का चौथा सिद्धान्त है-- राज्य का गैर धर्मनिरपेक्ष चरित्र। ''फासीवादी राज्य धर्म को गहरी आत्मिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मानता है, इसलिए वह न

सिर्फ धर्म का सम्मान करता है बल्कि उसका समर्थन और हिफाजत भी करता है। और वर्तमान सरकार किस धर्म को, किन साधनों और तरीकों से बढ़ावा दे रही है, इसे किसी व्याख्या की दरकार नहीं है। पाँचवा सिद्धान्त उपर्युक्त चारों सिद्धान्तों का मेल है, राज्य सर्वगुण सम्पन्न होता है और राज्य ''राष्ट्र का विवेक'' है।

देश के लिए इससे बड़ा कोई खतरा नहीं हो सकता कि पहले एक छवि गढ़ी जाये उसे लोगों के दिमाग में बैठाया जाये और फिर उनके भरोसे का फायदा उठाया जाये यानी सजीव नागरिकों को प्रयोग के बेजान विषय तक सीमित करना। इस प्रकार की राजनीति के बारे में तेलंगाना के लोकप्रिय नेता कालोजी की व्याख्या गौरतलब है। वह इस राजनीति की तुलना भेड़ों के इस मासूम विश्वास से करते थे कि उनकी खाल पर उगी ऊन गड़रिये के कम्बल की ऊन है जो उसने उदारतावश उन्हें ओढ़ा दी है। ऐसा ही कुछ नागरिकों के साथ भी है।

यह बढ़ता हुआ संकट बेहद आसन्न है, खासकर इसलिए कि विपक्षी पार्टियों के पास ऐसे नेतृत्व की कोई उम्मीद नहीं है जो वर्तमान शासन को चुनौती दे सके, न ही उनके पास लोगों के दिलोदिमाग में पैठ बनाने और उनका भरोसा जीतने की कोई रणनीति है।

अपने भाषण के अन्त में नोटबन्दी द्वारा हमारे सामने पेश की गयी चुनौतियों के बारे में एक संवेदनशील प्रेक्षण को याद करना चाहता हूँ। इतिहास इसे साबित करेगा कि नोटबन्दी एक नुकीले फच्चर की तरह है जिसने भारतीय संस्थाओं को अवरूद्ध कर दिया है और 'अभिजात विशेषज्ञों के एक भाईचारे का निर्माण किया है जो उत्तर-सत्ययुग की राजनीति को सत्यापित करने का दबाब महसूस कर रहे हैं और जो नागरिकों के सच्चे हितों की वकालत करने का ढोंग करते हुए दरअसल उन्हें बाइपास कर रहे हैं।